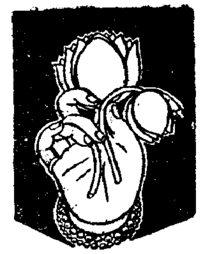

श्री सौभाग्यमल जैन

स्याद्वाद और अहिंसा

स्याद्वादो वर्तते यस्मिन्, पक्षपातो न विद्यते,
नास्त्यन्यपीडनं किंचित् जैनधर्मः स उच्यते ।

आचार्य ने संक्षिप्त में जैन धर्म का अंतस्तल उक्त श्लोक में व्यक्त कर दिया है. वास्तव में 'स्याद्वाद और अहिंसा' जैन धर्म का प्राण है. जिस प्रकार किसी प्राणधारी के शरीर में से प्राण निकल जाने पर वह निष्प्राण हो जाता है, उसका जीवन समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार "जैनधर्म" में से उक्त दोनों महान् सिद्धान्त यदि कम minus कर दिये जावें तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहेगा. वैसे सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने से ज्ञात होगा कि उक्त दोनों सिद्धान्त वास्तव में एक ही हैं. स्याद्वाद में अहिंसा की भावना निहित है और अहिंसा में स्याद्वाद की. जैन दर्शन में अहिंसा का सिद्धान्त सर्वोपरि है. जैन दर्शन ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग किया है. जैन दार्शनिक विचारमंथन ने प्राणी के बधनिषेध मात्र को अहिंसा की परिपूर्णता नहीं मानी अपितु यह भी आवश्यक समझा कि मनुष्य में "बौद्धिक अहिंसा" भी जरूरी है. मनुष्य में जब तक विचार करने की क्षमता है उसके दृष्टिकोण में अंतर रहेगा. इसी प्रकार विश्व में प्रत्येक वस्तु अनंत धर्मात्मक है और यह भी स्वाभाविक है कि मनुष्य के सीमित ज्ञान के कारण वस्तु का भिन्न-भिन्न स्वरूप अथवा प्रश्न के समस्त पहलू एक समय ही मनुष्य के मस्तिष्क में नहीं आ सकते. इस कारण मनुष्य का किसी वस्तु अथवा प्रश्न के सम्बन्ध में अभिप्राय आंशिक सत्य ही हो सकता है. यदि मनुष्य आंशिक सत्य पर ही परस्पर विवाद करता रहे तथा स्वयं द्वारा अनुभूत सत्य (आंशिक) को ही पूर्ण सत्य होने का दावा करता रहे तो यह परिपूर्ण सत्य नहीं हो सकता. वास्तव में आंशिक सत्यों को यदि एकत्रित कर लिया जाये तो ही पूर्ण सत्य का दर्शन हो सकता है. यही स्थिति विश्व के धर्मों की विभिन्न मान्यताओं के सम्बन्ध में है.

विश्व के धर्माचार्यों ने अपनी तात्कालिक परिस्थिति से प्रभावित होकर सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था. इस कारण यह स्वाभाविक था कि देश, काल, क्षेत्र की भिन्नता के कारण उन सिद्धान्तों में वैषम्य होता और यही हुआ भी. किन्तु मनुष्य अपने धर्माचार्यों के प्रति ममता, उनके मन में व्याप्त आग्रह तथा अहंकार ने उसको उस आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य मानने के लिए प्रेरित किया. परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक धर्म का अनुयायी अपने द्वारा स्वीकृत आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य, अन्तिम सत्य मानता रहा. यहां तक भी ठीक था किन्तु उसके आग्रह तथा अहंकार में वृद्धि हुई और उसने स्वयं द्वारा स्वीकृत आंशिक सत्य को दूसरे धर्मानुयायी से पूर्ण सत्य के रूप में मनवाने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया. परस्पर प्रतिस्पर्द्धा हुई, उससे कटुता निर्मित हुई और विश्व ने देखा कि धार्मिक असहिष्णुता ने विश्व में जघन्य दुष्कृत्य कराये और धर्म के नाम पर उनको स्वर्ग-प्रवेश का साधन बताया गया.

विश्व के इतिहास में रुचि रखने वाले सज्जन भलीभांति जानते हैं कि धर्म के नाम पर धार्मिक असहिष्णुता के कारण जितने अत्याचार हुए हैं उतने किसी अन्य कारण से नहीं हुए. यह आश्चर्य का विषय है कि 'धर्म' मनुष्य को आंतरिक शक्ति प्रदानकर्त्ता होते हुए भी मनुष्य ने उसका दुरुपयोग किया. विचार करने पर यही फलित होता है कि मनुष्य में आग्रह अहंकार तथा तज्जनित 'बौद्धिक हिंसा' काम कर रही है. धार्मिक असहिष्णुता के कारण हिंसक कृत्यों की हमारे देश में कमी नहीं रही. यूरोप आदि देशों में भी कमी नहीं रही.

जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर 'महात्मा महावीर' के हृदय में इस परिस्थिति के निराकरण के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठक भलीभांति जानते हैं कि महात्मा महावीर के समय में विभिन्न सिद्धान्तों (वादों) का प्रतिपादन करने वाले दार्शनिक तथा धर्माचार्य वर्तमान थे और वह अपने-अपने मतों का प्रचार करते थे. इस कारण यह स्वाभाविक था कि परस्पर जय-पराजय की भावना से वाद-विवाद होता, परस्पर कटुता निर्मित होती और परिणाम स्वरूप धर्म की आत्मा का हनन होता. जैन शास्त्रों से यह स्पष्ट है कि महात्मा महावीर के समय में ३६३ मत प्रचलित थे. बौद्ध साहित्य से भी यह स्पष्ट है कि उस समय ६२ या ६३ मत प्रचलित थे. संख्या का महत्व नहीं है किन्तु उस समय जन साधारण में मतिभ्रम था और परस्पर धार्मिक असहिष्णुता विद्यमान थी. महात्मा महावीर ने इस स्थिति पर गम्भीर विचार किया और यह प्रतिपादित किया कि यह सब आंशिक सत्य प्रतिपादित करते हैं. यदि पूर्ण सत्य का दर्शन करना चाहते हो तो एकांत का आग्रह तज दो. इसी संदर्भ में ३६३ मतों का समन्वय किया.

सूक्ष्म विचार करने पर यह भलीभांति स्पष्ट होगा कि महात्मा महावीर ने विश्व के प्रत्येक प्रश्न तथा वस्तु के सम्बन्ध में विचार करने की एक नई पद्धति को जन्म दिया जिसे "अनेकान्त-विचारधारा" कहा जाता है. संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि महात्मा महावीर ने प्रत्येक वस्तु तथा प्रश्न पर ७ नयों की अपेक्षा से विचार करके अपना मत स्थिर करने की जिस पद्धति का आविष्कार किया उसे 'सप्तभंगी' अथवा 'अनेकान्त-विचारपद्धति' कहा गया. उसे वाणी द्वारा स्पष्ट करने को "स्याद्वाद" नाम से अभिहित किया. सत्य यह है कि इस 'अनेकान्त-विचार पद्धति' में किसी पक्षविशेष के प्रति आग्रह नहीं होता, अनाग्रह होता है. किसी वस्तु अथवा प्रश्न के प्रति एक दृष्टिकोण अपनाने वाला उसी वस्तु तथा प्रश्न के प्रति अन्य दृष्टिकोण अपनाने वाले के प्रति उदार विचार रखता है. वह मानता है कि उसमें भी सच्चाई है. मेरे द्वारा अपनाया दृष्टिकोण जहां सत्य है वहाँ अन्य दृष्टिकोण में भी सत्यता हो सकती है. यह उदारता का लक्षण है. एकांत विचार-धारा का व्यक्ति जहां अपने द्वारा अपनाये दृष्टिकोण के प्रति 'ही' का आग्रह रखता है वहां अनेकांत विचारधारा वाला 'भी' का मत रखता है. वास्तव में महात्मा महावीर ने इस सिद्धान्त का आविष्कार करके विश्व के सम्मुख 'धार्मिक असहिष्णुता' या सर्वधर्मसमभाव का उदाहरण प्रस्तुत किया है.

महात्मा महावीर के निर्वाण से १००० वर्ष पश्चात् का काल साहित्य की दृष्टि से "आगमयुग" कहा जाता है अर्थात् विक्रमपूर्व ४७० से लेकर विक्रम पश्चात् ५ वीं शताब्दी तक का काल "आगम युग" है. उसके पश्चात् ५ वीं शताब्दी से ८ वीं शताब्दी तक का काल साहित्यनिर्माण की दृष्टि से "अनेकान्तयुग" कहा जाता है. इस युग में महात्मा महावीर के पश्चात्-वर्ती आचार्यों ने अनेकान्त पर प्रचुर साहित्य का निर्माण किया. महात्मा महावीर द्वारा प्रतिपादित "स्याद्वाद" सिद्धान्त का ही यह प्रताप था कि जैनाचार्यों ने जो तार्किक दृष्टिकोण अपनाया उस प्रकार का निष्पक्ष तथा उदार दृष्टिकोण अन्य के लिए अपनाना सम्भव नहीं था. श्रीमद् हेमचन्द्रचार्य ने शिवमन्दिर में निम्नप्रकार की स्तुति की थी—

> **भवबीजांकुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य ।**
> **ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥**

उक्त श्लोक में आचार्य ने उस महापुरुष को नमस्कार किया है जिसने रागद्वेष नष्ट करके पुर्नजन्म की सम्भावना समाप्त कर दी हो, चाहे वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो, हरि हो या जिन हो. इस उदारता का उदाहरण अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं है. जैनाचार्यों के तार्किक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में निम्न उद्धरण पर्याप्त होगा जो एक जैनाचार्य ने दृढ शब्दों में व्यक्त किया था—

> **पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।**
> **युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥**

उक्त आचार्य को न तो महावीर के वचनों के सम्बन्ध में पक्षपात है और न कपिलादि मुनियों के सम्बन्ध में द्वेष है. उनकी केवल एक कसौटी तर्क है. वह तर्क-युक्त वचनों को प्रमाण के रूप में मान्य करते हैं. इसी प्रकार एक अन्य आचार्य स्वयं महात्मा महावीर के अनुयायियों द्वारा अपनाई गई एकांत विचारधारा के कारण क्षुब्ध होकर स्पष्ट मन्तव्य देते हैं कि :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे, न तत्त्ववादे न च तर्कवादे,
न पक्षसेवाऽऽश्रयणेन मुक्तिः कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव ।

उक्त आचार्य ने केवल कषाय से मुक्तता को ही मोक्ष का कारण प्रतिपादन किया है. यदि हम जैनेतर दृष्टिकोण पर विचार करें तो वहाँ पर भी ऐसे सूत्र-वाक्य मिल जाते हैं जिनमें स्याद्वाद अथवा अनेकान्तविचार पद्धति का प्राधान्य है. उदाहरण के लिए "एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति" एक ही सत्य को विप्रगण अनेक प्रकार से प्रतिपादन करते हैं. वास्तव में विश्व ही भिन्नता का समूह है. उसमें किसी के दुराग्रह के लिए. कोई स्थान नहीं है.

हों भिन्न सब भिन्नत्व तो संसार का है नियम ही,
पर भिन्न होना नहिं किसी से बुद्धिमत्ता है यही ।

जैनाचार्यों ने इस सिद्धान्त का जनसाधारण को सरलता से बोध कराने के लिए कई उदाहरण अपने साहित्य में प्रस्तुत किये हैं. स्याद्वाद के सम्बन्ध में कुछ अजैन विद्वानों ने भ्रांति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है. कुछ विद्वान् इसे संशयवाद (ढिलमिल यकीनी) बताते हैं. यह भी कहा जाता है कि इसमें जब मनुष्य अपने से भिन्न दृष्टि को सत्य होने का विचार करता है तब वह अपने द्वारा अपनाये हुए दृष्टिकोण को असत्य मानता है. इसी प्रकार किसी समय एक दृष्टिकोण को सत्य मानता है किसी समय अन्य को. यही ढिलमिल यकीनी तथा संशयवाद कहा जाता है. किन्तु जैनाचार्यों ने दधिमंथन का उदाहरण देकर इसका निराकरण किया है. युरोपीय विद्वानों ने "सापेक्षवाद" (Prnciple of relativity) का आविष्कार करके उक्त सिद्धान्त की उपयोगिता मानी है. एक विद्वान् का कहना है कि यह सिद्धांत अत्यन्त सरल तथा तर्कपूर्ण है. यदि एक लकीर स्लेट पर खींच कर परीक्षा की जाये कि यह बड़ी है या छोटी ? तो निश्चित रूप से उसके दोनों उत्तर होंगे. अन्य लकीर (जो उससे छोटी हो) खींचकर उसे बड़ी कहा जा सकता है और अन्य (जो उससे बड़ी हो) खींचकर उसे छोटी कहा जा सकता है. यही तो सापेक्षवाद है.

स्याद्वाद सिद्धांत की पृष्ठभूमि में जो भावना काम करती है वही भावना प्रजातंत्रीय पद्धति में कार्य करती है. लोकतंत्रात्मक राज्य में पार्लियामेंट में "विरोधी दल" का बड़ा महत्त्व है. उसमें भी यही भावना काम करती है. "सत्तारूढ दल" अपनाई गई नीति में आलोचना की गुंजायश स्वीकार करता है. सत्तारूढ दल अपने द्वारा अपनाई नीति तथा कार्यक्रम में विश्वास रखते हुए भी इस बात की गुंजायश स्वीकार करता है कि अन्य नीति तथा कार्यक्रम देशहित के लिए अपनाया जाना उचित हो सकता है. उक्त आलोचना को सुनकर वह लाभ उठाता है. हम इसे 'राजनीतिक स्याद्वाद' के नाम से अभिहित कर सकते हैं.

जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है स्याद्वाद एक अंग है अहिंसा का. स्याद्वाद वास्तव में बौद्धिक अहिंसा ही है. ऊपर यह भी बतलाया जा चुका है कि जैनदर्शन में "अहिंसा" सर्वोपरि है. यदि यह कहा जाए कि "अहिंसा" जैनदर्शन का पर्यायवाची नाम है तो भी अत्युक्ति न होगी. भगवान् महवीर ने स्पष्ट कहा था कि जो तीर्थंकर पूर्व में हुए, वर्तमान में हैं, तथा भविष्य में होंगे, उन सबने अहिंसा का प्रतिपादन किया है. अहिंसा ही ध्रुव तथा शाश्वत धर्म है. इस प्रकार जैनदर्शन में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि पाया जाता है. जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित "अहिंसा" के सम्बन्ध में देश में काफी भ्रम रहा. किसी ने उसे अव्यवहार्य बताया, किसी ने उसे वैयक्तिक बताकर सामाजिक, राजकीय प्रश्नों के लिए अनुपयोगी बताया. इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न करने वालों ने जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित "अहिंसा" का पूर्ण अध्ययन किये विना ही उसकी आलोचना की है. जो जैनदर्शन मनुष्य अथवा प्राणधारी के जीवन की प्रत्येक क्रिया में हिंसा का आभास पाता है और कहता है कि विश्व में किसी भी प्राणधारी की, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति तथा त्रस जीवों की हिंसा से विरत रहना चाहिए, उसी जैनदर्शन के व्याख्याता आचार्यों ये यह भी प्रतिपादित किया कि—

"जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयंमासे, जयं सये,
जयं भुंजंतो, भासंतो, पावकम्मं न बंधई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तात्पर्य यह है कि जैनदर्शन यह मानता है कि किसी भी प्राणधारी का जीवन सर्वथा अहिंसक होना असम्भव है, क्योंकि प्राणधारी द्वारा जीवित रहने के लिए वायु काय आदि के जीवों का संहार विना इच्छा ही हो जाता है. इसी कारण उपरोक्त व्याख्याकार ने यत्नपूर्वक जीवनयापन में पापकर्म के बंधन न होने का प्रतिपादन किया है. हमारे देश के जीवन में अहिंसा की जो छाप दृष्टिगोचर होती है वह जैनधर्म की देन है. सामूहिक प्रश्नों के निराकरण के लिए अहिंसा का प्रयोग हमारे देश में काफी सफल रहा. जैनदर्शन में मनुष्य को केवल वैयक्तिक जीवन व्यतीत करने का ही विधान नहीं किया है अपितु सामूहिक जीवन में उसके कर्त्तव्य भी बतलाये हैं. जैनशास्त्र "स्थानांग सूत्र" में ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म आदि का उल्लेख करके मनुष्य को सामूहिक जीवन के कर्त्तव्यों का बोध कराया गया. हमारे देश में विदेशी सत्ता के विरुद्ध महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में "अहिंसक युद्ध" ही लड़ा गया. जिसके परिणामस्वरूप देश स्वतन्त्र हुआ और आज हम स्वतन्त्रता के फल भोग रहे हैं. वास्तव में यह प्रयोग था. हमारे इतिहास में शायद ही अहिंसा के सामूहिक प्रयोग का उदाहरण उपलब्ध हो सके. प्रचीन ग्रंथों में हार तथा हाथी के लिए स्वजनों का युद्ध एक प्रसिद्ध घटना है. रामायणकाल में रावण को सत्पथ पर लाने के लिए श्रीरामचन्द्र ने युद्ध का ही आश्रय लिया. महाभारत मे भी भ्रातृजनों में व्याप्त कलह के कारण युद्ध को अनिवार्य माना गया. महाभारत युद्ध के एक पात्र के द्वारा निम्न वाक्य कहलाये जो तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते हैं और जिससे युद्ध की अनिवार्यता स्पष्ट होती है.

"सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धे न केशव"

वास्तव में अहिंसा के प्रयोग में गांधी-युग ने एक नई दिशा का श्रीगणेश किया था किन्तु गांधीयुग के उक्त श्रीगणेश को आज विश्व में अधिक प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है. आज पूज्य गांधीजी के स्वर्गवास को १५ वर्ष हो गये. उनके अभूतपूर्व व्यक्तित्व के अभाव के कारण "अहिंसा" का विचार गति नहीं पा रहा है, विश्व के राजनीतिज्ञ अपने प्रश्नों के निपटाने के लिए अहिंसा का माध्यम स्वीकार नहीं करते अपितु हिंसक युद्ध को माध्यम मानते हैं. यही कारण है कि कुछ समय पूर्व चीन ने सीमा विवाद के नाम पर भारत पर हिंसक आक्रमण किया और शांतिप्रेमी भारत को अपने रक्षण के हेतु शस्त्रों का उपयोग करना पड़ा. दुर्भाग्य से हमारे बीच अहिंसा का अपूर्व हामी पूज्य गांधी जी जैसा प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं है. इसी कारण अहिंसा के तत्त्वदर्शन को हमारे जीवन में जो स्थान मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पा रहा है. काश समाज कोई ऐसा नररत्न पैदा कर सके.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org